राजपूत (क्षत्रिय) वंश का इतिहास

*क्षत्रिय वंष के परंपरागत आदर्षों की रक्षा तथा वंष की गौरवषाली संस्कृति की पुर्नस्थापना हेतु सतत प्रयत्नषील, संकल्पित एवं संघर्शरत उन तमाम क्षत्रिय–कुल–भूशणों को **गौतम बुद्ध सेवा संस्थान** और **राजपूत समाज, जमषेदपुर** का षत षत नमन।*

प्रस्तावना

प्रतिष्ठित इतिहासकारें ने क्षत्रिय वंश के इतिहास पर आज तक काफी कुछ लिखा है। इतिहासकारों ने अनेकों प्रमाणों के द्वारा अपनी लेखनी को सच्चा एवं निष्पक्ष साबित किया है। परन्तु यह विषय अभी भी अधूरा है।

क्षत्रिय वंशावली,गोत्र, पावन परम्पराओं मान मर्यादाओं, वीरताओं का ही इतिहास है। कहीं –कहीं पर ऐसा लगता है कि इतिहासकारों ने 'क्षत्रिय इतिहास' पर अपनी कुंठित भावना का समावेश ज्यादा किया है।

भारत का हर प्रबुद्ध वर्ग जानता है कि भारत के इतिहास को यदि क्षत्रियों का इतिहास कहा जाए तो इसमें अमिशयोक्ति न होगी । क्योंकि भारतीय इतिहास का 90 प्रतिशत क्षत्रियों द्वारा रचा गया है। फिर भी इतिहास में क्षत्रियों का स्थान नगण्य है।

वैदिक काल, उतर वैदिक काल, बौद्ध, मौर्य, गुप्त,**हर्षवर्धन** के शासन काल तक देश की रक्षक जाति '**क्षत्रिय**' के नाम से जानी जाति थी, परन्तु हर्षवर्धन के शासनकाल के बाद इतिहास में एक नाटकीय मोड आता है और एक नया नाम '**राजपूत**' क्षत्रिय जाति के लिए आता है। वस्तुतः हर्षवर्धन के शासन के बाद भारत में एकछत्र राज्य का अभाव हो गया। राज्यों के अधिकांश शासक राजपूत ही थे। अतः यह युग राजपूत युग कहा जाने लगा। ***इतिहासकारों ने क्षत्रिय वंश को यहीं से राजपूत वंश बना दिया, एक नई जाति बना दिया।***

इतिहासकारों ने राजपूतों को विदेश्यिों की यंतान या क्षत्रियों से अलग बताने का सबसे बडा कारण यह माना है कि छठी श्ताब्दी पूर्व किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में राजपूत शब्द की चर्चा नहीं मिलती है। *उन प्राचीन ग्रंथों में राजपुत्र की चर्चा मिलती है*। इतिहासकारों ने राजपुत्र और राजपूत को अलग – अलग माना है। यह भ्रम है। परन्तू इसी राजपुत्र का अपभ्रंश राजपूत है। राजा को यदि एक से ओधक संतान होती थी तो परम्परा के अनुसार बडे बेटे की ही राज्य का उतराधिकारी बनाया जाता था तथा वही राजा कहलाता था तथा अन्य छोटे बेटों को राजपत्रु कहा जाता था। बाद में यही राजपुत्र छोटे – छोटे रियासतों में बंटवारा कर शासक बन गये। बाद में यही राजपुत्र समूहवाचक या जातिवाचक बन गया। राजपूत हिन्दी का शब्द है। यह संस्कृत शब्द राजपूत्र का अपभ्रंश है। प्राचीन ग्रंथों में राजपूतों के लिए राजपुत्र राजन्य , बाहुज आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

– राजपूत बंशावली पृ. .. 3

क्षत्रिय अर्थात राजपूतों के तीन प्रधान वंश हैं –

1, सूर्यवंश   2, चन्द्र वंश   3, अग्नि वंश

सूर्य वंश

सूर्यवंश में प्रथम इक्ष्वाकु हुए , जिनकी राजधानी अयोध्या थी। अक्ष्वाकु वैवस्वत मनु के पुत्र थे। पुराण आदि अध्ययन से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा से मरीच , मरीच से कश्यप, कश्यप से सूर्य, सूर्य से वैवस्वत मनु हुए। वैवस्वत मनु ने अयोध्या नगरी बसाई और उनके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु अयोध्या के प्रथम राजा हुए। इन्हीं इक्ष्वाकु से सूर्य वंश की उत्पति हुई।

सूर्यवंशी राजाओं की वंशावली इस प्रकार है :

मनु , इक्ष्वाकु , विकुक्षि , परंजय , अनेना , पृथू , कृषदश्व , अन्ध्र, युवनाश्व, श्रावस्त , वृदिश्व ,कुवलायाश्व दढाश्व , प्रमोढ , हर्यश्व , निकुम्भ , संहताश्व , कृशाश्व , प्रसेनजित , युवनाश्व , मान्धाता , पुरुकुत्स , सदस्यु , सम्भन , अनरण्य , त्रसदश्व , हर्यश्व , वसुमान , त्रिधन्वा , त्रख्यारुणि , सत्य वृत , **हरिश्चन्द्र** , रोहिताश्व, हरित, चंचु , विजय, रुरुक , वृक , वाहु , सगर , असमंजस , अंशुमान , दिलीप , भगीरथ, श्रुत , नाभग , अम्बरीष , सिन्धुद्वीप , अयुत्रायु . ऋतुपर्ण , सर्वकाम , सुदास , सोदास, अश्मक , मूलक , दशरथ , एडविड , विश्व सह , दिलीप, रघु , अज , दश्रथ, **रामचन्द्र** , कुश , अतिथि , निषध , नल , नभ , पुण्डरीक , क्षेमधन्ध , देवानीक, पारियाग , दल , वल , दत्क , वृजनाभ , शंयाण , ध्युपिताश्न , विश्वसह , हिरण्यनाम, पुष्य ध्रुव सन्धि , सुदर्शन , अग्निवर्ण , शीर्घ्र , मरु , प्रसुश्रुत , सुसन्धि , अमर्ष, सहस्वान , विश्षभन, वृहदवल , ब्रहद्रर्थ , उरु क्षय , वत्सव्यूह , प्रतिव्योम , दिवाकर, सहदेव , वृहदश्व , भानुरथ , प्रतीतीश्व , सुप्रतीक , मरुदेव , सुनक्ष , किन्नण, अन्तरिक्ष , सुपर्प्प , अभित्रजित , वृहद्राज , धर्मी, कृतंजय , रंणजय संजय , शाक्य, शुद्धोधन , **सिद्धार्थ** , राहुल , प्रसेनजित , क्षुद्रक , कुण्डक , सुरथ , समित्र।

उपरोक्त नाम मुख्य –2 सूर्यवंशी राजाओं के हैं। क्योंकि मनु से राम तक केवल चौसठ राजाओं के नाम मिले हैं जबकि यह एक लम्बी अवधि है। अतः सभी राजाओं का नाम मिलना असम्भव है।

दशरथ जी के चार पुत्र **श्रीराम , लक्ष्मण , भरत** तथा **शत्रुध्न** हुए। इन चारों भाइयों के दो –दो संताने हुई। **श्रीराम** के लव एवं कुश , **लक्ष्मण** के अंगद एवं चन्द्रकेतु , **भरत** के तक्षक एवं पंष्कल, **शत्रुध्न** के सुवाहु एवं बहुश्रुत हुए। इस वंश में और भी कई राजाओं का नाम भागवत एवं पुराणों में आया है जिसे विस्तार भय से छोड दिया गया है ।

– राजपूत पत्र, आगरा, भाग–12 एवं पदमपुराण से।

चन्द्र वंश

चन्द्रवंशीय क्षत्रिय ब्रह्मा के दूसरे पुत्र अत्रि की संतान हैं। महर्षि अत्रि की धर्मपत्नी अनुसुईया का ज्येष्ठ पुत्र सोम था। सोम का वशं होने से सोम वंश या चन्द्रवंश कहलाया।

सोम या चन्द्र का पुत्र बुध था। जिससे अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर बनाया था। बुध का पत्रु पुरुरवा था इनसे आयु इनके नहुषू, इनसे पयाति हुए, पयाति की दो पत्नियां थी। एक शर्मिष्ठा तथा दूसरी देवयानी जो शुक्राचार्य की पुत्री थी। रानी शर्मिष्ठा के तीन पुत्र दह्यू, पुरु तथा अनु हुए। रानी देवयानी से युदु तथा दुर्वसु हुए।

चन्द्रवंशी नरेशों की नामावली इस प्रकार है :

अत्रि, सोम या चन्द्र , बुध , पुरुरवा , आयु, नहुष , पुरु ,जनमेजय , प्रचिन्वान , प्रवीर , मनसयू,अभयद, सुधू, बहुगत, संयाति ,अहंयोति ,रौद्राश्ष. ऋतेपु ,मतनार ,तसु, ऐलीन ,दुष्यन्त ,भरत ,मन्यु ,वृहखम, सुहोत्र, हस्ती, अजमीढ, ऋक्ष, संवरण, कुरु, जन्हू ,जनमेजय, सुरथ, विदुरथ, सार्वभौम, जयत्से ,आराधित, आयुतायु, अक्रोधन ,देवातिथि, ऋक्ष भीमसेन ,दिलीप ,प्रतीप , शांतनु, विचित्रषीर्य ,पाण्डु ,युधिष्ठिर ,परीक्षित ,जनमेजय ,शतानीक, सहस्मानीक, अश्वमेघ दत, अधिसीशकृष निचक्षु उष्ण ,चित्ररथ ,सुचिरथ ,वृष्णिभान ,सुषेण ,युनीथ ,रुच ,नृयक्षु सुखीवल, परिप्लव ,सुनय ,मेधावी ,नृपुजय ,मृद, तिग्म वृहदरथ ,वसुदान ,शतीनीक, उदयन, वहीनर ,दण्डपानि ,निरामि , क्षेंमक।

– राजपूत बंशावलीं।

शान्तनु की पहली रानी गंगा से देवव्रत भीष्म तथा दूसरी रानी सत्यवती से चित्रांगद एवं विचि वीर्य हुए । चित्रांगद से धृतराष्ट तथा विचित्रवीर्य से पाण्डु उत्पन्न हुए। धृतराष्ट के दुर्योधन आदि 100 पुत्र तथा पाण्डु से कर्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव हुए। युधिष्ठिर की रानी देविका से योद्वेय, द्रोपदी से प्रतिविम्व सुतसोम , श्रुत कीर्ति शतानीक श्रुत कर्मा का जन्म हुआ। अर्जुन की रानी सुभद्रा से अभिमन्यु जिनसे परीक्षित का जन्म हुआ।

– राजपूत वंशावली।

अग्निवंश

क्षत्रत्किल त्रयत इत्युद्र क्षत्रस्य शब्दों भुवनेषु रुढः
राज्मेन किं कद्विपरीत वृतेः प्राणैरुप कोशमलीन सर्वाः।

अर्थात विश्व को आन्तरिक एवं बाह्वा अत्याचारों जैसे शोषण, भूख अज्ञान, अनैतिकता, अनाचार तथा शत्रु द्वारा पहुंचायी गई जन – धन की हानि से बचाने वाले क्षत्रिय हैं। इससे अलग कार्य करने वाला क्षत्रिय नही हो सकता और न ही वह शासन करने का अधिकारी हो सकता है।

पवार या परमार, चौहान, चाहमान, चालुक्य, तथा प्रतिहार – इन चार वंशों को कई इतिहासकार अग्निवंशीय मानते हैं।

चंद्र वरदायी का मतह है कि जब परशुराम ने पृथ्वी को 21 बार क्षत्रिय शुन्य कर दिया था तब राक्षसों ने ऋषियों को सताना शुरु कर दिया। ऐसी स्थिति में वशिष्ट आदि कई ऋषियों नें आव पर्वत पर यज्ञ कराया तथा प्रभु से प्रार्थना किया कि हमारी रक्षा के लिए एक शक्तिशाली जाति उत्पन्न किया जाय। ऐसा होने के पश्चात उस यज्ञ से चार अति शक्तिशाली पुरुष पैदा हुए जिन्होने अपने नाम से 4 वंशों को चलाया।

कवि धनपाल ने 'तिलक मंजरी' में अवुलफ जन्म आईने–ऐ–अकबरी में, कवि योधराज नें 'हम्मीर रासो' में तथा कवि पदमगुप्त ने 'नव साहसिक चरित्र' में इसकी पुष्टि की है –

इस मत को मानने वाले कहते है कि जहां यज्ञ हुआ था वहीं 'क्षत्रिय अभियंत्रित' मठ था। इसलिए उसमें उत्पन्न पुरुष अग्निवंशीय क्षत्रिय जैसे महाभारत में वर्णित द्रौपदी, धृष्टधुम तथा अंगीर ऋषि की उत्पत्ति भी अग्निकुंड से ही हुई।

जब देश में बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के प्रचारकों ने अहिंसा का प्रचार शुरु किया तो इसका लाभ विदेशियों ने उठाया। हर्षवर्धन के बाद देश छोटी – छोटी रियासतों में बंट गया। तब विदेश्यिों ने इन रियासतों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। देश में तबाही मच गई। इसी अवसर पर 'वशिष्ठ पीठ' के किसी ऋषि ने क्ष्त्रियों का एक संघ बनाया और उसने विदेशियों को खदेड दिया तथा पुनः शान्ति स्थापित की। उपरोक्त चार वंश जिन्हें भ्रम से अग्निवंश कहा जाता है, इस संघ में सम्मिलित हुए।

भविष्य पुराण में यही वर्णन आता है कि जिस समय बौद्ध एवं जैन धर्मों का पूर्णतः विकास हुआ तो वैदिक धर्म नष्ट होने लगा। अत : काल्प–कुब्ज ब्राह्मण ने वेद विधि से अग्नि कुण्ड तैयार कर वैदिक मंत्रों से हवन कुण्ड में 'ब्रह्म होम' नामक यज्ञ किया था और उपरोक्त चारों वंश उसमें दीक्षित हुए थे ।

भिन्न–भिन्न इतिहासकारों के अनुसार
राजपूतों के वंषों का विवरण इस प्रकार है :

महाकवि काल्हण ने राज–तरंगिणी में क्षत्रियों के 36 वंशों की चर्चा की है। पृथ्वीराज रासो में वर्णित है :–

वंश क्षत्रीय, गनीजे भारी , च्वार कुली कुल तीन अधिकारी
सव सु जात जोनी भग .... ए वृह्मा अविशेष विसिष्पिए।

रवि राशि जाधव वंश, कुकुस्थ परमार सदाकर चाहुवान चालुक्क, छंद सिलार आमीयर दोयमत मकवान, गरुज गोहिल गोहिलपुत्र चापोत्कट परिहार, राव राठौर रोस जुत देवश वंक सैनव अग्नि, योतिक प्रतिहार दुधिषट कारटट पाल करटपान हंए, हरितट गौर कलावमद धन्य पालक निकुंभ वर, राजपाल कीव नीस काल छरक्के आदि है वरने वंश छत्तीस।

उपरोक्त पद्य का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि रवि, शशि और यादव वंश तो पुराणों में वर्णित हैं किन्तु इनकी 36 शाखाएं है।

इस सूची में वर्णित वंश शेसजुत, अनंग, योतिका, दधिपट, कारटपाल, कोरपाल, हरीतट, कैमाश, धान्यपाल, राजपाल आदि आजकल नहीं मिलते है। यह या तो विलूप्त हो गये हैं या फिर स्थान या व्यक्ति सें प्रभावित होकर दूसरे नामों से जाने जाते हैं।

छतीस कुल की सूची मतीराम के अनुसार निम्न है :–

सूर्यवंश, पेलवार, राठौड, लोहथम, रधुवंशी, कछवाहा, सिरमौर, गहलौत, वघेल, करबा, सिरनेत, वैस, निकुम्भ, कौशिक, चन्देल, यदुवंश, माही, त्रेमर, वनाफर, काकन, हरिहोवंश, गहरवार, करमवार, रैकवार, भदौरिया, शकरवार, गौर, दाक्षित, बग्वलिया, विश्वेन, गौतम, सेंगर, उदयवाकिया, चौहान, पडिहार और सुलंकी।

कई इतिहासकारों द्वारा प्रकाशित वंशावली से संशोधित कर 36 कुल की सूची निम्न प्रकार है :–

''दस रवि से चन्द्र से द्रादस ऋषि प्रमान,''
''चार हुतासन यज्ञ से यह छतीस कुल जान।''

1, सूर्यवंश :
शाखाएं –विशेन वंश, दोनवार वंश, रघुवंशी, लौहथम्भ (लोहतमिया)।

2, **ग्रहलोत या गहलोत या गहलौत** :
शाखाएं – गाोहिल, सिसौदिया, महथान, चमियाल, कडियार या मडिऔर, भोंसला, गोरखावंश, सिंधिया।

3 **निकुम्भ** :
शाखाएं – श्रीनेत या सिरनेत, नरवनी या नरौनी, कटहरिया।

4 **नागवंश** :
शाखाएं – कर्कोटक (कश्मीर में) तक्षक (पंजाब तथा कश्मीर में) टांक वंश (पंजाब में) , पंचकर्पट वंश (पंजाब में)।

5 **यादु (यादववंश)** :
शाखाएं – यदुवुश, भाटीवंश, हैहय वंश, जाडेचा, कलचुरि वंश या कलचुरिया वंश।

6 **राठौर** :
शाखाएं – रैकवार, जायस, कैलवाड, सूरवार, दहिया, महरौड।

7 **चहुवान या चौहान** :
शाखाएं – हरड़ा, खींची, गोपलवाल, भदौरिया, सिरोही, राजकुमार।

8 **गौतम बंश** :
शाखाएं – मौर्यवंश, कुण्डवार या कण्डवार गौतमिया, गोनिहा, अण्टैया।

9 **कछवाहा वंश** :
शाखाएं – नरवर कछवाहा, शेखावटी या शेखावत।

10 **परमार बंश** :
शाखाएं – चावड या चावग, डोड (डोडा), उज्जैन, गन्धवरिया, मालवीय, ढेकहा, भुआल।

11 **प्रतिहार या परिहार बंश** :
शाखाएं – भुतहा, मलहजनी।

12 **चलुक या चालुक्य या सोलकी बंश** :
शाखाएं – बघेल, भरसुरिया, तातिया या टेटिहर, भालेसुलान, काकनवंश।

13 **वैस वंश : (राजा वासु के वंशराज वैस कहलाए)**
शाखाएं – कोटवाहर वैस, कठ वैस, डौडिया वैस, त्रिलोकचन्दी वैस, प्रतिष्ठानपुरी (प्रयाग)।

14 **गौड वंश** :
शाखाएं – वृद्ध गौड, चमरगौड, भटटगौड गौडहर, अमेठिया।

15 **वडगूजर वंश** : शाखाएं – सिकरवार।

16 **दीक्षित** वंश : शाखाएं – नेवतनी, दुर्गवंशी, विलखरिया, किनवार।
17 **तंवर या तोमर वंश :**
शाखाएं –रुणेचा, वेरुआर, रैकवाल या रैकवार, रवाति, विलदारिया,
18 **सोमवाल या चन्देल वंश :**
शाखाएं – चमरकटे वंश, मोहविए या महोविया वंश।
19 **सेंगर वंश** : शाखाएं – बरहयिा।
20 **गहरवार वंश** : शाखाएं – कर्मवार, वुन्देला, माण्डा, डैया।
21 जिट वंश।
22 सिलार या सुलार वंश।
23 वनाफर वंश।
24 चावडा वंश।
25 डोड या डोडा वंश।
26 **सोमवंशी या चन्द्रवंशी वंश :**
शाखाएं – पुरु वंश, कुरु वंश, हरिद्वार क्षत्रिय वंश, कौशिक वंश, जनवार वंश , पलवार या पालीवाल, भृगुवंश।
27 **दहिमा वंश** : शाखाएं – पुण्डीर वंश।
28 दहिया वंश : शाखाएं – सिरोही वंश।
29 कावा वंश।
30 बडवालिया।
31 उदय वालिया वंश।
32 कोटपाल वंश।
33 राजपाल वंश।
34 धान्यपाल वंश।
35 रोस जुत वंश।
36 अनंग वंश।

इस सूची में वर्णित कावा, वउवोलिया, उदय वालिया, राजपाल, कोटपाल, धान्यपाल, रोस जुत, जिट, सिलार, अन्नग वैश आजकल नहीं मिलते है । इन वंशों की वंशावली व रियासतों का वर्णन अप्राप्य है। चन्द्रवंश के कई वंशों का विवरण नहीं मिलता है।

क्षत्रियों – राजपूतों की उपाधियां

क्षत्रियों में सबसे बडा राजा का पद होता था। राजा को परमात्मा का रुप माना जाता था। राजाओं को नरेश, भूपति, महीप, महीपति, राजन्य आदि नामों से पुकारा जाता था। राजाओं के भी अनेक दर्ज होते थे यथा – राजाणिराज, महाराज, महाराजाधिराज, सम्राट, चक्रवर्ती समगाट कहा जाता था।

राजाओं से छोटे सरदारों को सामंत, जागीरदार, जमींदार, किलेदार तथा ठाकुर कहा जाता था। राजाओं के पुत्रों को राजपुत्र, राजकुंवर, राजकुमार कहा जाता था। राजा का उतराधिकारी युवराज कहलाता था।

क्षत्रियों के नाम के साथ 'सिंह' शब्द लगाया जाता है, क्योकि क्षत्रियों को सिंह की तरह बहादुर, बलवान माना जाता था। सिंह की उपााधि धारक सबसे पहले क्षत्रिय महात्मा बुद्ध हुए जिनका बचपन का नाम सिद्धार्थ था और इनका नाम सिद्धार्थ सिंह तथा शाक्य सिंह मिलता है।

शाक्य वंशी होने के कारण ही शाक्य सिंह लिखा गया है। इसके बाद एज्जैन के परमार राजा विक्रमादित्य के मंत्री अमर सिंह जिन्होने अमर कोष की रचना की थी का नाम मिलता है। ये आज से लगभग 2000 वर्ष पुर्व हुए थे। इसके बाद महाराजा रुद्र सिंह का नाम आता है। इनका समय सन 181 से 196 तक था। इसके बाद मालवा के परमार राजाओं में मेवाड के गहलोत नरेशों में बारहवीं शताब्दी में अनेक नाम मिलते है। उसके बाद सिंह शब्द का प्रचलन सभी क्षत्रियों में हो जाता है।

बिछडे बंधु

परिस्थितिवश मध्यकाल में क्षत्रियों के कई वंशों ने मुस्लिम धर्म अपना लिया। कई वंशों ने इसाई धर्म अपना लिया। बाबर ने जयचन्द्र और उसके पुत्र त्रिलोक को मुसलमान बना दिया तथा उसका नाम तातर खां रख दिया था।

उपसंहार

क्षत्रिय वंशावली लिखने और पढ़ने में जातिवाद की भावना नहीं आनी चाहिए। क्षत्रिय बन्धुओं को अपना अतीत जानने, एकजुट होने एवं राष्टीय भावना से प्रेरित होकर राष्ट को एक सूत्र में बांधने का कार्य करना चाहिये।

अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी क्षत्रिय वंशावली रुपी समुद्र से मात्र एक बूंद ही मिल सका और उसे आपके सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि भाषा एवं संग्रहित वंशावली में कोई कमी है तो पाठक बन्धु क्षमा करें। जिन वंशों की जानकारी नहीं मिल सकी है इस वेब साईट पर विस्तारित करने में हमे सहयोग अवश्य करें। त्रुटियों एवं चूक के लिए हम आप सबसे क्षमा प्रार्थी होंगें।

क्षत्रियों के गोत्र

क्षत्रिय वंशावली पर कई इतिहासकारों, विद्वानों ने मतान्तर या एक मत होकर काफी कुछ लिखा परन्तु क्षत्रियों के गोत्र पर विशेष ध्यान नहीं दिया। वस्तुतः वंशावली एवं गोत्र दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस तरह सिक्के के दोनों पहलू ठीक होने पर ही सिक्के की कीमत होती है। एक भी पहलू खोटा होने से सिक्के की कीमत खत्म हो जाती है। उसी प्रकार क्षत्रियों का इतिहास वंशावली से ही पूर्ण हो जाएगा ऐसा नहीं है। इसके लिए गोत्र पर विशेष ध्यान देना होगा। इसमें विशेष अध्ययन की अवश्यकता है।

क्षत्रिय वंशावली की प्रमाणिकता इनके गोत्र से ही है। क्षत्रियों के गोत्र हमें प्राचीन ऋषियों की संतान प्रमाणित करते हैं।

प्राचीन ग्रन्थ महाभारत में वर्णन आता है कि विश्व के आरम्भ में केवल चार ही ऋषि थे :– अंगीरा, कश्यप, वशिष्ठ और भृगु।

ये चार ऋषि चार मूलगोत्र कहलाते हैं।

'' मूलगोत्राणि चत्वारि समूत्पनानि भारतः।
अंगीरा कश्यप्श्चेन वश्ष्ठिों भृगुरेश्च''। ।

इन्हीं चार ऋषियों से आर्यों की उत्पति हुई।

गोत्र ऋषि सप्तर्षियों में से कोई एक अथवा उसका पुत्र या वंशज होता है। भृगु का नाम सप्तर्षियों में नहीं आता है। उनके वंशज जमदग्नि का नाम आता है। इसी प्रकार अंगीरा के स्थान पर उनके दो पौत्रों भारद्वाज तथा गौतम का नाम आता है। अत्रि और विश्वामित्र भी सप्तर्षियों में हैं।

इस प्रकार अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, भारद्वाज, जमदग्नि, कश्यप, वशिष्ठ ये सप्तर्षि हैं। इन सप्तर्षियों के बाद में अगस्त्य ऋषि को भी मिला लिया गया। ये सभी गोत्र ऋषि वेदों की विभिन्न शाखाओं के प्रवर्तक थे।

चन्द्रवंशियों का गोत्र अत्रि है। क्योकि ये क्षत्रिय चन्द्र की संतान है और चन्द्र अत्रि की संतान हैं। सूर्यवंशियों की उत्पति वाली ऋषियों से हुई जो वंश जिस ऋषि की संतान है वही ऋषि उस वंश का गोत्र कहलाता है।

जैसे :– परमार वशिष्ठ ऋषि की संतान हैं, अतः इनका गोत्र वश्ष्ठि है।

वर्तमान समय में एक वंश के वंशज अलग – अलग स्थानों पर अलग – अलग गोत्र लिखते हैं। कई वंश ऐसे हैं जिनका उत्तर भारत में अलग तथा दक्षिण भारत में अलग गोत्र है। जबकि वे एक ही ऋषि के संतान हैं। कहीं –कहीं एक ही वंश की अनेक शाखाओं में अलग – अलग गोत्र मिलते हैं।

उपर्युक्त प्रश्नों का एक ही उतर है – क्षत्रिय हजारों वर्षो तक युद्ध में लिप्त रहे। ईसा पूर्व तथा बाद के समय सारा भारत विदेशी आक्रमणों से जूझता रहा। मुस्लिम काल सारा का सारा युद्ध काल कहलाया।

ऐसे भीषण आक्रमण एवं युद्ध में लिप्त रहने के कारण क्षत्रियों को देश, धर्म, संस्कृति और अपनी जान की रक्षा करना ही कठिन हो गया। इसे पूर्व स्थिति में लाने की समस्या उत्पन्न हुई। परन्तु तब तक काफी देर हो चुकी थी। देश, धर्म एवं संस्कृति को यथावत लाना संभव नहीं था और देश, धर्म, संस्कृति, क्षत्रिय वंशावली एवं गोत्र परम्परा काफी भूल भुलैया में पड़ गये।

ऐसी विषम परिस्थिति में जिन क्षत्रिय वंशों को अपने गोत्र एवं प्रवर का ज्ञान नहीं रहा वे अपने पुरोहितों का गोत्र उच्चारण करने लगे। यथा –

वैदिक सूत्र के अनुसार –

"अथ मेषां मंत्र कृतो न स्यू: ।
स पुरोहित प्रवरास्ते प्रवृणीरन ।।

प्रवर – प्रवर का अर्थ– श्रेष्ठ, वरण करने योग्य अथवा आवाहन करने योग्य। वेदों में अग्निपूजा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इस पूजा के साथ उन पूर्वज ऋषियों के कामों का उच्चारण किया जाता है जो अग्नि का आहवान किया करते थे। अतः हवन करते समय अपने प्रवरों का नाम लेकर अग्नि देवता को बताना पडता है कि मैं अमुक ऋषि वंश का हूं।

गोत्र ऋषि प्रवर ऋषि उसका प्रसिऋ वंशज होता है। जिसके नाम से उस वेश की प्रसिद्धी हुई।

एक गोत्र ऋषि के साथ एक, दो, तीन या पांच प्रवर होते है। जिस वंशके जितने भी प्रवर होगे यज्ञोपवीत में उतनी ही गांठें होती हैं।

वैदिक सूत्रोंकी संख्या कनश्चित होती है। अतः प्रपरों की संख्या भी निश्चित होती है। वोधायान सूत्र के अनूसार गोत्र तो सहस्त्रों हो सकते हैं परन्तु प्रवर केवल 49 ही होते हैं।

जिन ऋषियों ने वेदों की ऋचाओं की रचना की थी इन प्रवर ऋषियों में अनेक क्षत्रिय सम्राट भी थे।

जैसे मान्धाता, अम्बरीस, युवनाश्व, पुरुकुत्स आदि। सूर्यवंशी सम्राट तथा सुनक मत्र, अजामिध आदि चंद्रवंशी सम्राट थे। प्रवराध्याय से यह ज्ञात होता है कि वैदिक ालि में बहुत से क्षत्रिय ब्राह्वाण हो गये और इसी तरह बहुत से ब्राह्मण क्षत्रिय हो गये। क्योंकि उस समय जातिप्रथा इतनी कठोर नहीं थी। जैसे कण्व ऋषि जो महराज दुष्यन्त के पूर्वज थे तथा चंद्र वंश में जन्मे थे।

पुरुकुत्रस सूर्य वंशी क्षत्रिय थे परन्तु बाद में ब्राह्मण होकर अंगीरस समुदाय में जस मिले। मुदगल चंद्रवंशी क्षत्रिय थे परन्तु इनके वंशज अब ब्राह्मण है। वायु पुराण में चन्द्रवंशी सम्राअ गर्ग के ब्राह्मण होने का वर्णन मिलता है। विश्वमित्र भी वैदिक काल से क्षत्रिय थे जिनके वंशज अब कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण है। क्योंकि विश्वमित्र का दूसरा नाम कौशिक था।

गोत्र के संबंध में सामान्य धारणा यही है कि इससे किसी एक पूर्वज से चली आ रही पंक्ति ज्ञात होती है।

वोधायन ने गोत्र प्रवरों की निम्न तालिका को माना है –

कम	गोत्र	प्रवर ऋषि
1	अगस्त्य	अगस्त्य, माहेन्द्र, मायोभुव।
2	अंगिरस	अंगिरस, ब्राईस्पत्य, वशिष्ठ।
3	कण्व	अंगिरस, अजमीढ, काण्व।
4	अत्रि	आत्रेय, आर्चनान, श्यावाश्व।
5	कौण्डिल्य	कौण्डिण्य, वशिष्ठ एवं
	(कौणिडल्य)	मित्रावरुण।
6	कौशिक	विश्वामित्र,देवरात, औदल।
7	कश्यप	काश्यप, अवत्सार, असित।
8	गौतम	गौतम, वशिष्ठ, व्राहस्पत्य।
9	वत्य	जामदग्न्य, अप्तुवान, यवन, भार्गव, और्व।
10	जामदग्न्य	जामदग्न्य, और्व, वशिष्ठ।
11	मुदगल	अंगिरस, तार्क्ष्य, मौदगल्प।
12	वरिष्ठ	वरिष्ठ, इन्द्रप्रमद, भरदवसु।
13	भारद्वाज	भारद्वाज, बरर्हस्पत्य, टंगिरस।
14	वासुकि	अनन्त, अक्षोभ्य, वासुकि।
15	विश्वामित्र	विश्वामित्र, देवरात, औदल।
16	शाण्डिल	काश्यप, अवत्सार, शाण्डिल्य।
17	शुनक	शुनक, सोनहोत्र, गार्त्समद।
18	गर्ग	अंगिरस, सैन्य, गार्म्य।
19	गोंकर्ण	गोकर्ण ऋषि।
20	हरित	अंगिरस, अम्बरीष, चुववाश्वः।
21	विष्णु वृदध	अंगिरस, पोरुकुत्स, त्रासदस्य।
22	कुत्स	अंगिरस, मान्धता, कोत्स।
23	परासर	परासर, शक्ति, वशिष्ठ।

क्रम	गोत्र	प्रवर ऋषि
24	पूतिमास	अंगिरा, उशिज, सूवचोतथ्य।
25	माण्डव्य	भृगु, तण्डि, मत्स्यगंध।
26	कपिल	विष, वृषार्वा।
27	शौनक	धर्मवृदध, गृत्समद, शुनक।
28	याज्ञवल्क्य	पतिर्णन, वीरणिन।
29	व्यास	पेल,वाष्कल, सन्यश्रवस।
30	लोमस	कालशिख, गोरवृषा, कैलाप।
31	पुलत्स्य	पुलत्स्य, विश्व श्रवस, दभेलि।
32	मंकिन	मंकिन, मेंकणक, केंण।
33	दुर्वासा	दुर्वासस, आत्रेय, दत्तआत्रेय।
34	नारद	वारद, काण्व, पर्वत, नारदित्र।
35	प्रहलाद	विरोचन।
36	वकवाल्भ्य	ग्लावमैत्र, दालभ्यः।

उपसंहार

अपनी वंश परम्परा के अनुसार अपने पूर्वजों को प्रतिष्ठा देना, उनकी मर्यादा अनुसार आचरण करना एवं उनके बताए हुए राह पर चलना हम सबका नैतिक धर्म है।

क्षत्रियों के साथ इतिहासकारों का अन्याय

'भारत का इतिहास' मुख्यतः प्रारम्भ में विदेशी इतिहासकारों, जो भारत पर निरंतर आक्रमण करने वाली विभिन्न जातियों के समुदाय के थे, अथवा उनके दास थे, ने लिखा। उन विदेशी इतिहासकारों के कथन को आधर मानकर या फिर उसमें जोड – तोड कर, हमारे इतिहासकारों ने भी, वस्त ु– स्थिति की गहराई में बिना गये, नव –नूतन भाव पिरोकर जो कुछ लिखा है, खास कर प्राचीन क्षत्रिय और मध्यकालीन राजपूतों के विषय में, वह हमारे इतिहार के साथ एक अन्यायकारी अध्याय की शुरुआत है।

इतिहासकारों ने राजपूत वंशों के विषय में यह लिखा है कि वे प्राचीन क्षत्रियों की संतान नहीं है। यहां तक कि चन्द्रगुप्त मौर्य, महान अशोक, समुद्रगुप्त, सम्राट हर्षवर्धन आदि जैसे महान वीर सपूतों को क्षत्रिय नहीं माना है। यही नहीं राजपूतकाल के प्रादुर्भाव काल में जिन वीर – बॉकुड़े परिहारों ने हर्षवर्धन से ज्यादा बडा साम्राज्य 'आसेतु हिमालय' कायम किया था, और जिनका उक्त साम्राज्य करीब पौने दो वर्षो तक बरकरार रहा , को विदेशी शक – हूण आदि की संतान कहा। हास्यास्पद तो यह है कि कि ऐसे राजपूतों की संख्या हजार, दस हजार, लाख ही नहीं है, अपितु भारत की वर्तमान जनसंख्या **108** करोड़ के, करीब **6.5** प्रतिशत से भी अधिक है। ये आज के भारत ही नहीं अपितु अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगलादेश, बर्मा, तिब्बत आदि देशों में हजारों वर्षों से रहते रहे हैं। हजारोंशिला –लेख, सैकडों भयंकर युद्धों, जल –प्लावन, दुर्दांत, क्रूर, बर्बर, आततसयी आक्रमणकारियों द्वारा हमारी सास्कृतिक धरोहरों, विश्वविद्यालयों व पुस्तकालयों के विध्वंस किए जाने के बावजूद अभी भी अपनी आपबीती कह रहे हैं। फिर भी ऐसे करोढों राजपूतों के वंशानुगत प्राचीन दावों को धूल – धूसिरत तर्क – वितर्को से मंघाच्छादित कर उनकी पौराणिता को ही सिर्फ ऑच नहीं पहुॅचाई गई, अपितु उनके सांस्कृतिक अस्तित्व को गहरा आघात पहुॅचाया गया है।

. इतिहासकारों ने शक एवं हूणों को भारत की पवित्र भूमि से बाहर करने वाले वीर सम्राट चन्द्रगुप्त को भी क्षत्रिय नहीं माना, कुछ इतिहासकारों ने संदेह प्रगट किया है। दुनिया की हर भाषा एवं जाति का साहित्य उसके इतिहास का धरोहर होता है। भारत में भी कतिपय विद्वान साहित्य – शिल्पियों ने हमारे इतिहास को संजोकर रखा है। यह सत्य है कि साहित्यकार समाज का सृजक होता है अतः उसे यथार्थ और कल्पना के चक्र पर साहित्य रचना करनी पड़ती है। परन्तु महत्वपूर्ण ग्राम्य – साहित्य सत्यम शिवम सुन्दरम की आधारशिला पर टिकी होती है। जयशंकर प्रसाद ने चन्द्रगुप्त नाटक में उसे 'परमार ' क्षत्रिय, विस्तृत तर्क देकर पुराणों के हवाले सिद्ध किया है। इसी तरह चन्द्रगुप्त का विवाह लिच्छवी वंश की राजकुमारी कुमारदेवी से हुआ था जो भारतीय नेपोलियन सम्राट समुद्रगुप्त की मां थी। समुद्रगुप्त ने खुद अपनी स्वर्ण मुद्राओं पर अपने को लिच्छवियों का नाती कहा है। यथा – 'लिच्छवि दौहित्रः' ***यही नहीं चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का विवाह नागवंशीय क्षत्रिय राजकुमारी कुवेरनागा से हुआ था***। जावा से प्राप्त 'तंत्रों कामादक' नामक ग्रन्थ के आधार पर डा. आर. सी. मजूमदार (रमेश चन्द्र मजूमदार) ने यह प्रमाणित किया है कि महाराजा ऐश्वर्यपाल इच्छवाकु वंशी थे और उनका उदभव **गुप्तवंश** से हुआ था। बौद्ध ग्रन्थों में पालवंशी शासको को, जिसका संस्थापक गोपाल था, ***सूर्यवंशी*** कहा गया है। उसकी राजधानी मुंगेर थी। प्रतिहारों के प्रभाव के अस्ताचलगामी होने पर, पूरे मगध (बिहार) पर बंगाल के पालवंशी शासको का शासन हो गया था। धर्मपाल के पुत्र ने भागलपुर के निकट *विक्रमशिला विश्वविद्यालय* की स्थापना की थी। जिसके अवशेष हाल की खुदाई में प्राप्त हुए।

जिन भारत वीर क्षत्रियों ने समस्त भूमण्डल को झकझोर दिया था, जिन आर्य – वीर राम और कृष्ण के शास्त्र का लोहा आज भी पूरी दूनिया मानती है। जिन गौतम एवं महावीर के सत्य – अहिंसा का उपदेश एक समय एशिया की सीमाओं को लांघ गया था, वे भी क्षत्रिय कुल में ही उत्पन्न हुए थे और तत्कालीन सनातन धर्म में व्याप्त ब्राहाण धर्म के विकार दूर करने के लिए तत्कालीन समाज का त्राण उन मनीषियों ने किया, उनके वंश को भी इतिहासकारों ने संदेहपूर्ण दष्टि से देखा है। वस्तुतः राम, कृष्ण, गौतम , महावीर एवं अशोक सभी एक ही संस्कृति के पोषक थे और वह थी 'आर्य–संस्कृति' जिसके रक्षक एवं वाहक सदा सर्वदा क्षत्रिय कुल शिरोमणि ही रहे। जब विदेशी आक्रांताओं ने हमारी संस्कृति को नष्ट करने का बीड़ा उठा लिया, हमारी धरती और धर्म दोनों पर करारा वार किया और दुर्दिन आया तभी सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात करीब 90वर्षो के बाद भारत के विशाल भू–भाग को एक सूत्र में वीर –परिहारों ने बांधा।

आधुनिक इतिहासकारो ने यह माना है कि भारत का अंतिम हिन्दू सम्राट हर्षवर्धन को जो पूर्ववर्ती इतिहासकारों ने कहा है, वह दोषपूर्ण है क्योंकि हर्षवर्धन के साम्राज्य से अधिक बडें भू–भाग पर वीर परिहारों ने सैकडों वर्षो तक राज्य किया है। तत्कालीन सभी राजपूत वंश उसके सामंत थे। परिहारों ने अपने को लक्ष्मण का वंशज कहा है। कहीं–कहीं इन्हें अग्निवंशीय भी कहा गया है। परन्तु इतिहासकारों ने इन्हें विदेशी शक हूणों की संतान बताया है। साथ – साथ इन्हें एक बर्बर विदेशी जाति की संतान कहा है। इस प्रकार इनके क्षत्रित्व को और इनकी राष्टीयता को एक चुनौती दी गयी है।

सर्वप्रथम राजपूत शब्द की उत्पति जो आर्य वीरों के काल में हो चुकी थी, न कि मध्यकालीन राजपूत काल में। यजुर्वेद के तीसरे अध्याय से यह स्पष्ट हो जाता है :–

ब्रध्यतां राजपुत्राश्च । बाहू राजन्य कृत ।
बध्यतां राजपुत्राणां कन्दता मितितेरम ।।

यजुर्वेद, अध्याय – 3 – प्राचीन ग्रन्थों में राजपूत , राजन्य , बाहुज आदि शब्द का उल्लेख मिलता है । राजपूत शब्द संसकृत के शब्द राजपुत्र का हिन्दी अपभ्रंश है। वस्तुतः क्षत्रिय राजाओं का ज्येष्ठ पुत्र राजगदी का अधिकारी होकर राजा कहलाता था और उसके अन्य भाई राजा का पुत्र होने के कारण, राजा नहीं कहाकर राजपूत कहे जाते थे। काल के चक्र ने शब्दों के जाल को दिग्भ्रमित किया और जब विदेशियों का आवागमन आर्यावर्त में होने लगा तब से उन विदेशियों ने एवं उनके कृपा पर जीने वाले प्रशस्तिकार रचनाकारों ने हमें नीचा दिखाने के लिए हमारी कौम को आर्यवीरों की संतान कहने में नाक–भौं सिकोड़ा। यद्यपि खुद ईरान के सम्राट विस्तास्प पुत्र दारयबहु दारा ने अपने को क्षत्रिय कहा है जो ईसा पूर्व 521–484 ई0 में हुआ –

'आर्यानां आर्य तथा क्षत्रियाणां क्षत्रियः'।

महाराज विक्रमादित्य जो ईसा से 57 वर्ष पुर्व विदेशियों को पराजित करने में पूर्णरुपेण सफलीभूत हुए और विक्रम संवत की प्रतिस्थापना की, उनके राजदरबार का अमर कवि, अमर सिंह ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ अमर – कोष में क्षत्रिय शब्द के साथ –साथ उसके र्प्यायवाची के रुप में राजन्य (राजा का अंश) – राजपूत प्रयुक्त किया।

ब्रह्म वैवर्त पुराण में भी राजपूतों को सूर्य यवं चन्द्र – वंश का माना गया है। आस्टिया , हंगरी जर्मनी , जापान आदी के लोग अभी भी सूर्य का वंशज मानते हैं। परन्तु भारतीय राजपूतों को जो मुलतः आर्यो की संतान हैं इतिहासकारों ने उनके सूर्य एवं चंद्रवंशी होने में संदेह प्रगट किया है। यथा 'चन्द्रादित्य मनुनांच प्रवरा क्षत्रिया स्मृत' – ब्रह्म वैपर्त पुराण , 10 –15 । यही नहीं कलिंग के खारवेल संस्कृति के प्रवर्तक राजा खारवेल के शिला–लेखों, ईसा के तीसरी शताब्दी के (अभी भी 'हाथी गुम्फा' में विद्यमान) हैं, से स्पष्ट दिग्दर्शित होता है कि प्राचीन क्षत्रियों के ही वंशज कुशम्य राजपूत थे। गिरिनार के शिला–लेख जो 150 ई0 में लिखे गये, में यौद्धेय राजपूत की चर्चा है। रोहतक के पास खोखरा कोट स्थान में खुदाई से प्राप्त सिक्कों में 'यौद्धेयानाम गणराज्य' उत्कीर्ण है जो पहले योद्धेय राजपूतों का तथा बाद में परिहार राजपूतों का टकसाल था। तीसरी शताब्ही में लिखे गये जग्गयमेट और नागार्जुनी कोड में भी इच्छाकु वंशीय क्षत्रियों के प्रमाण उपलब्ध हैं।

तात्पर्य यह है कि विदेशियों के आगमन के काल में काल – चक्र के थपेड़े से आक्रांत हमारी संस्कृति का इतिहास काल के गर्भ में चला गया फिर भी ये करोड़ों की संख्याओं में जीवित हैं। अभी भी विद्यमान हैं और अपने को प्रचीन क्षत्रियों के वंशज होने का दावा करते हैं फिर भी इतिहास के दावेदारों ने उनके साथ कितना बड़ा अन्याय किया है यह सिर्फ इतनी सी बात से प्रतीत होता है कि यदि ये राजपूत आर्य वीर भारतीय क्षत्रियों के संतान नहीं हैं तो क्या ये 12 –13 करोड़ राजपूत विदेशी ही हैं। आजादी के पूर्व एवं पश्चात मध्यकालीन एवं प्राचीन कालीन इतिहास के सैकड़ों प्रसिद्ध इतिहासकार हो चुके है, देशी एवं विदेशी दोनों, परन्तु उनमें से एक भी यह स्पष्टतः दिग्दर्शित नहीं कर सका और न प्रमाणित कि वर्तमान राजपूतों या मध्यकालीन राजपूतों में कौन – कौन सा राजपूत वंश प्राचीन क्षत्रियों के वंशज हैं। ऐसे एक भी प्राचीन क्षत्रिय वंश से उत्पन्न राजपूत वंश की प्रमाणिकता किसी भी प्रसिद्ध इतिहासकार ने परिवेष्टित नहीं किया है, जो मध्यकालीन राजपूत थे। प्रश्न यह उठता है कि क्या प्राचीन आर्य वीर क्षत्रियों में से कोई भी शाखा राजपूत काल में विद्यमान नहीं था। आखिर वे करोडों क्षत्रिय, जिनके पदचाप से भूमंडल परिचित था, जिनकी संस्कृति के अवशेष अभी भी जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, तिब्बत, ईरान, जापान, चीन, अफगानिस्तान आदि में विद्यमान हैं, कहॉ चले गये ?

प्राचीन क्षत्रियों के साथ जो अन्याय इतिहासकारों ने किया है उसमें यहां हम मुख्यतः परिहार राजपूतों के संदर्भ में ही विचार करते हैं। **ए. स्मिथ** का मत है कि परिहार राजस्थान स्थित 'श्रीमात्य' नामक स्थान के मूल निवासी हैं। इतिहासकार **फिलट** ने इन्हें उज्जैन का मूल शासक कहा है। **कवि कल्हण** के 'राजतरंगिणी' एवं **'पृथ्वी–राजरासो'** के रचनाकार **चन्द्रवरदाई** के अनुसार परिहार अग्निवंशीय हैं जिनका एदभव मनि यज्ञ कुंड से आबू पर्वत पर हुआ था। सम्राट महेन्द्रपाल के समकालीन कवि **राजशेखर** ने (1) कर्पूर मंजरी (2) भुवन – कोष (3) हरि – विलास (4) बाल – भारत (5) काव्य मीमॅासा आदि ग्रंथों की रचना की है। ***खजुराहो के शिजुराहो के शिलालेख जिसे सम्राट देवपाल परिहान ने उत्कीर्ण कराया तथा मंदसौर का शिला –लेख 945 ई. में भी परिहारों ने अपने को प्रचीन क्षत्रिय बताया है*** । ग्वालियर की प्रशस्ति से (सम्राट मिहिरभोज जिसने करीब 49 वर्षो तक अपनी तलवारों से महान परिहार सार्माज्य की स्थापना की थी) यह प्रतीत होता है कि 'वह' प्रथमतः अवन्ती का शासक था फिर कन्नौज का स्वामी हुआ। जैन ग्रन्थ हरिवंश, अवन्ती के शासक के ताम्र – पत्र, अरब लेखकों की कृतियां, दौलतपुर, केहला आदि के भी लेख एवं प्रतापगढ़ के अभिलेख से यह स्पष्ट है कि परिहार प्राचीन क्षत्रियों के संतान है। चंदरवरदाई ने इन्हें अग्निवंशीय माना है। कर्नल टाड, मिस्टर जैक्सन आदि ने अग्नि से इनकी उत्पति के कथन को कपोल – कल्पना बताकर , ये विदेशियों से उत्पन्न गुर्जर वंश के है, ऐसा कहा है। कर्नल टाड ने राम के पुत्र कुश का वंशज भी अन्हें माना है। परन्तु नई शोधां सक यह स्पष्ट दिग्दर्शित हो रहा है कि राम के अनुज लक्ष्मण के ये वंशज हैं। ज्ञातव्य है कि यही लक्ष्मण वनवास काल में भग्वान राम एंव सीता के प्रतिहार के रुप में रहे थे। ऐसा मत जोधपुर के महाराज बाउक द्वारा उत्कीर्ण नौवींशताब्दी के शिलालेख से भी प्रमाणित होता है। यथा :–

स्वभ्राता राम भद्रस्य प्रतिहार्य कृतं सत ।
श्रा प्रतिहारवड शोभमत श्री न्नातिमाण्युयात । ।'

परिहारों की प्रामाणिकता प्राचीन क्षत्रिय होने की एक झलक कालीदास के 'रधुवंशम से मिलती है । यथा :–

'अंगद चन्द्रकेतु च लक्ष्मणोप्यात्म सज्ञावौ ।
शासनदु रघुनाथस्य चके कारापथेश्वरी । ।'

लल्क्ष्मण के दो पुत्र थे – अंगद एवं चन्द्रकेतु । दोनों ने कारापथ विजय करके अपना राज स्थापित किया था । महाराज कक्वुक का धरीयाला का शिला –लेख भी उन्हें लक्ष्मण का वंश प्रमाणित करता है । यथा –

'रहुतिलओं परिहारों आसी सिरि लक्खणोत्रि रामस्य ।
तेज पडिहार वन्सो समुणई एत्थ सम्पतो । ।'

प्राचीन मुंगेर मगध की सीमा पर अवस्थित अंग – देश की राजधानी रहा है। 'सकल उत्तरा–पथ नाथ' कहे जाने वाले कन्नौज के प्रतिहार साम्राज्य के अंतर्गत यह लम्बे अर्से तक रहा। उतरापथ के भाग्य का फैसला मुंगेर जिला अवस्थित वर्तमान जमूई से करीब 25 मील उत्तर –पश्चिम में गंगा –तट पर सूरजगढ सूर्यगंढ में हुआ। प्रतिहार सम्राट ने पालवंशियों को शिकस्त दी। परन्तु राष्टकूटों एवं पालों की विशाल सेना ने परिहारों को दूसरे युद्ध में दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में परास्त किया था। मेरे पूर्वजों की यह मान्यता रही है कि वे मगध एवं अंग के बीच किउल नदी के दोनों तटों का शासक अनेक वर्षो तक कन्नौज के प्रतिहार सम्राट की एक शाखा के रुप में रहे। परन्तु पालवंशियों के उत्थान के पश्चात एवं राजेन्द्र चोल के उत्कर्ष काल में परिहारों का तेज अस्ताचल गामी हो रहा था और दसवीं शताब्दी के अंत होते–होते हमारे पूर्वजों का शासन मध्य प्रदेश के पूर्वांचल एवं उतराचंल के प्रदेशों तक किसी न किसी रुप में विद्यमान था क्योंकि बिहार में आकर बसने वाले हमारे पूर्वज कुमार सितावी सिंह 'उँचहरा' रियायत एवं उसकी तीन अन्य वंश शाखायें मध्य प्रदेश में अपने अतीत को याद दिलाती है। उँचहरा की ही दूसरी शाखा 'नागौर' रियासत में है।

इतिहास प्रसिद्ध परिहार वंश का शासनकाल सन 750 ई0 से सन 1018 ई0 तक का काल कन्नौज की राजधानी से माना जाता है। इतिहासकारों ने यह माना है कि मुल्तान का विशाल सूर्य मन्दिर कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों ने बनवाया था तथा सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर जो गुजरात में अवस्थित था और जिसे मोहम्मद गोरी ने 1018 ई0 में तोड़ा था, भी प्रतिहार सम्राट शासन काल में उसके चालुक्य – सामंत ने गनाया था। यहीं नहीं सिन्ध के राजा दाहिर जब अरग आक्रमणकारियों से पराजित हुए, आर्य भूमि की रक्षा के लिए सम्राट मिहिरभोज ने तत्कालीन प्रसिद्ध राजपूत राजवंशों की विशाल सेना एकत्रित कर राष्ट को एक सूत्र में बांधा।

फलतः अरबों को बलूचिस्तान तक खदेड़ दिया गया। उक्त मिहिरभोज ने वाराह की उपाधि धारण की थी। लक्ष्मण के उपर्युक्त दो पुत्रों जिनका राज्य हिमालय की गोद में कीरीपंथ में था, के पश्चात परिहारों का इतिहास कुछ काल के लिए काल के गाल में ग्रसित प्रतीत होता है परन्तु महाभारत काल के तुरन्त बाद धन्व – देश के महाराजा यज्ञ परिहार से पुनः परिहार – वंश का वर्णन मिलता है । इनके निम्नलिखित वंशज हुए –

इनके निम्नलिखित वंशज हुए :–

01	यज्ञ परिहार	28	यशमहि	55	भगवंतमहि	82	जयसिंह राणा
02	जोधदेव	29	स्ंगमहि	56	सख्तमहि	83	धनेश्वर राज
03	थ्संहदेव	30	श्राममहि	57	विक्रममहि	84	बुद्धसिंह राणा
04	पहाड़देव	31	विश्वमहि	58	सोहनमहि	85	दीप्त राणा
05	पृथ्वीदेव	32	संग्राममहि	59	हंसमहि	86	शंभूराणा
06	जयद्रुमदेव	33	रंचमहि	60	मल्लमहि	87	अजराणा
07	समयाधिदेव	34	ध्वजकृत	61	गौतममहि	88	नाहरराव
08	कुशंगराज	35	मदनकृत	62	शुक्रपाल	89	रघुदेव
09	भर्वजराज	36	मक्काकृत	63	बलराजा	90	धनराज
10	गुरुपाल	37	योवनाश	64	उतिमराज	91	गंगपाल
11	देवानीक	38	भगदत	65	मधुराज	92	जीवराज
12	बैनदेव	39	शत्यश्रवा	66	सक्तिमान	93	अयामक
13	योगबल	40	मेरवीन	67	गिरिवरधर		
14	श्रीपत	41	क्मलसेन	68	वैणीराज		
15	स्ंतकृत	42	स्वयंकृत	69	अतिराज		
16	मालकृत	43	चम्पकराज	70	हंसदेव		
17	मुखिनकृत	44	महाबाहु	71	बच्छदेव		
18	श्रंजनकृत	45	हरिन्द्रराज	72	समंतवेद		
19	प्रहलाद	46	पुलिन्दराज	73	कर्णदेव		
20	मिहिब	47	कलिंगराज	74	हरिहरदेव		
21	ध्वजमहि	48	शावल्यराज	75	संयमराज		
22	त्र्ाशंकुमहि	49	हरदतराज	76	अमरराज		
23	अक्षयमहि	50	नैनपाल ‘दशमहि	77	धर्मपाल		
24	व्नमहीप	51	पदमद्वीप	78	चन्द्रपाल		
25	भीममहि	52	लहूर महीप	79	कृष्णपाल		
26	मल्लमहि	53	अचलमहि	80	वेुणीपाल		
27	स्वर्णमहि	54	दलमहि	81	अनुपमपाल		

1 21 वें शासक ध्वजमहि ने विन्थ्ल नगरी बसाकर वहॉ अपनी नई राजधानी बनाई।

2 77 वें शासक धर्मपाल ने बदलगढ़ बनवाया तथा 78 वें शासक चन्द्रपाल ने गौड़ राजा का सिर काटकर **बम्बा देवी** पर चढ़ाया और नर्मदा नदी के तट पर आजोरगढ़ राज्य स्थापित किया।

कुछ प्रमुख राजवंष :–

कन्नौज –परिहार – वंश

नागभटट प्रथम *देवराज – वत्सराज – नागभटट* (805– 832 ई.) – राममद्र, (832–836 ई.) –भोज प्रथम, (836–885 ई. – इसे ही मिहिरभोज भी कहते हैं) – महेन्द्रपाल प्रथम, (913– 945 ई.) – भोज द्वितीय, (910–913 ई.) – महीपाल –द्वितीय, (945 – 948 ई.) – देवपाल, (948– 951 ई.) – विनायक पाल , (951 – 953 ई.) – महीपाल तृतीय, (954 –959 ई.) विजयपाल, (959 – 1008 ई.) राज्यपाल, (1008 – 1026 ई.) त्रिलोचन पॉल, (1027 – 1030 ई.) यशपाल, (1030 – ....ई.)।

कवि राजशेखर महेन्द्रपाल – महेन्द्रपाल प्रथम, विनायक पाल – हेरम्ब पाल, भोज – द्वितीय के समकालीन थे। (885 ई0 से 910 ई0) महेन्द्रपाल (1) और भेज द्वितीय सौतेला भाई थे। देवपाल का सौतेला भाई विजयपाल था।

महाराज – यज्ञ – परिहार के 82 वीं पीढी में जय सिंह राणा हुए। उनके बाद के लोग राजा की पदवी धारण करने लगे। 87 वीं पीढ़ी में जयसिंह राजा अजराणा हुए। जिसे नागार्जुन भी कहा जाता है। इन्होने नर्मदा के उस पार से आकर नागौर राज्य की स्थापना की। उनके पुत्र नाहरराव ने ही विश्वप्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ पुष्कर का निर्माण एक विशाल झील खुदवाकर किया। उक्त नाहरराव वि0 सं0 छठी शताब्दी में हुए थे। नाहरराव के पुत्र रघुदेव हुए। जिनके नाम पर लोग राघववंशीं कहलाने लगे और इतिहासकारों को इसी राघव शब्द से परिहारों के विषय में उन्हें राम के पुत्र लव – कुश की शाखा मानने का भ्रम हुआ। राजा – यज्ञ परिहार के 93 वीं पीढी में राजा अयामक हुए, जिनके 12 पुत्र थे। इन 12 पुत्रों से आगे 16 शाखाओं का विकास हुआ। जोधपुर के निकट जोधपुर के वर्तमान किले एवं निर्माण की पूर्व काल का वहां से 3 मील पर अवस्थित मन्डौवर का प्रसिद्ध किला है। उक्त किले का शिल्पबौद्ध एवं शैव दोनों णर्मो का प्रतीक है। कर्नल टॉड ने असकी काफी प्रशंसा की है। 30 करोड देवी – देवताओं की प्रतिमाओं का दर्शन थोडी ही दूर पर होता है। ऐसा 'सचित्र भारत – के लेखक श्री रामाशंकर सिंह मृदुल ने अपने भ्रमण के दौरान 1933 ई0 के पूर्व पाया था। उक्त मांडोवर का किला राजा अयामक के पुत्र बुल्लर ने बनवाया था। उनकी

चौथी शाखा में राजा खीरवा, पोखा, बुधखेल या पोरवा का वंशवृक्ष चला जिनकी राजधानी उॅचहरा, नागौर एवं बुन्देलखण्ड के अनेक भूखण्डों पर उरई आदि रियासत में था। उरई के ही राजा माहिल थे जिनकी बहन से विवाह इच्छा के विरुद्ध महोबा के राजा परामर्दीदेव के पुत्र परमाल ने किया था। कहा जाता है कि राजा माहिल प्रसि़द्ध परिहार सम्राट के वंशज थे और महोबा के चन्देल राजा परिहार सम्राटों के सामन्त हुए थे। इसीलिए महिल ने अपनी बहिन का विवाह उनसे नहीं करना चाहा। चन्देलों का तेज उत्कषै पर था। अतः राजा माहिल तब किसी युद्ध में बाहर गए हुए थे तभी धोखे से उनकी बहन से विवाह कर लिया था। असी पगकार उनकी अनुपस्थिति में ही उनकी अन्य बहनों का विवाह परमाल ने बनाफर सरदार वछराज एवं जसराज से करा दिया , परन्तु इन किसी भी विवाह को राजा माहिल ने स्वीकार नहीं किया और अपनी कूटनीति से उसने राजा परमाल तथा जसराज , वछराज सबों को भिन्न – भिन्न युद्धों में नीचा दिखाया। यहां तक कि जसराज एवं वछराज के प्रसिद्ध वीर बॉकुडे पुत्रों आल्हा एवं उदल एवं मलखान आदि को उन्होने कभी भी अपने भॅजे के रुप में स्वीकार नहीं किया।

राजा माहिल की सहायता का भरोसा पाकर दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज ने महौबा पर चढाई की थी। कहते है दिल्ली एवं कहौबा के बीच दो युद्ध हुए । इतिहास प्रसिद्ध वीरमलखान एवं उदल इन्हीं युद्धो में वीर –गति को प्राप्त हुए। वीर आल्हा जिन्हें महाभारत वीर अश्वत्थामा एवं गुरु गोरखनाथ का आशीर्वाद प्राप्त था जनश्रुति के अनुसार अमर है। उॅचहरा जिसे उॅचहर भी कहते हैं, से मात्र 12 कि0 मी0 पर अवस्थित प्रसिद्ध मैहर तीर्थ है। जहां पर्वत की चोटी पर मॉ शारदा का यशस्वी मंदिर है। कहते हैं अभी भी सर्वप्रथम मंदिर का पट जब प्रातः काल खुलता है तो मॉ के चरणों में ताजा खुशबूदार फूल चढा मिलता है। लोगों की यह धारणा है कि महावीर आल्हा, जिन्हें इतिहास ने भूला दिया , नित्यप्रति ब्रह्ममुहूर्त में सर्वप्रथम मॉ शारदा की पूजा करने आते हैं। राजपूत परिवारों में यह भी जनश्रुति है कि महाराज पृथ्वीराज को महाभारत कालीन अश्वत्थामा, जो महाभारत के अनुसार अभी भी जीवित हैं।

जब परीक्षित जो भ्रण अवस्था में उतरा के गर्भ में थे , तभी अश्वत्थामा ने अपने पिता की छल से मृत्यु के पश्चसत, ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर पाण्डवों के एक मात्र उतराधिकारी की भ्रूण हत्या करनी चाही थी, जिस पर भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें श्राप दिया था कि मानवता के ऐसे हंता को मृत्यु भी वरण नहीं करेगी और वह भी हजारों वर्ष तक हिमालय की उपत्यकाओं में भटकता रहेगा को अस्त्र–शस्त्र की विद्या खासकर शब्द भेदी बाण चलाने की दीक्षा दी थी। महाराज पृथ्वीराज में पौरुषत्व का पूर्ण गुण विद्यमान था उनकी दोहरी छाती में नारीनुमा नहीं थे और देखने में उनकी छाती कवचधारी प्रतीत होती थी। आल्हा–उदल के शौर्य की गााथाएं आज भी सिर्फ बुन्देलखण्ड ही नहीं , अपितु पूरे भारत में मुर्दे में भी जान भरने वाली प्रतीत होती है। इनत थ्यों की चर्चा यहां मैने इसलिए की कि अतिहासकारों का ध्यान इस लोकगाथा की ओर नहीं गया है और आल्हा एवं उदल एवं राजा माहिल जो राजपूत काल के अवसान काल के संभवतः महान कूटनीतिज्ञ थे को उचित स्थान अतिहासकारों ने अब तक वहीं दिया है।

महाभारत का भी ऐतिहासिक महत्व नहीं दिया गया था, परन्तु विगत दशक की खुदाई से, समुद्र के गर्भ से, कृष्ण की द्वारिका–नगरी के अवशेष इन तथ्यों के ज्वलन्त प्रमाण हैं , कि महाभारत के आख्यान कपोल –कल्पित नहीं अपितु यत्य है।

प्रसिद्ध परिहार सम्राटों की वंशावली निम्नलिखित है जिन्होंने कन्नौत जो तत्कालीन भरत का सबसे महत्वपूर्ण सास्ंकृतिक केन्द्र था पर शासन किया था। नागभटट प्रथम के प्रपौत्र, नागभट द्वितीय ने कन्नौज के शासक चक्रायुद्ध को पराजित कर अपनी राजधानी कन्नौज में 805 ई0 स्थापित कर परिहार वंश –शाखा कीं नींव डाली। *सम्राट मिहिर – भोज ने उतर में हिमालय, पुरब में बिहार, पश्चिम में पंजाब तथा दक्षिण में सौराष्ट तक अपना राज्य विस्तार किया था। विद्वन में बिहार, पश्चिम में पंजाब तथा दक्षिण में सौराष्ट तक अपना राज्य विस्तार किया था। विद्वान इलियट ने मिहिर – भोज को अरबों का अमित्र तथा इस्लाम का सबसे बडा शत्रु माना है। कुरुक्षेत्र के पेहोबा प्रशस्ति से वहॉ तक, उसके राज्य की सीमा का पता चलता है। रोहतक के खोखराकोट नामक स्थान में पाये गये टकसाल का पगमाण उसके तॉबा –चॉदी के सिक्के हैं , जो प्रचुर मात्रा में वहॉ पाये गये। करनाल में भी प्राचीनकालीन परिहार राजाओं से निर्मित मूर्तियॉ प्राप्त हुई हैं। मिहिर भोज के सिक्कों पर एक ओर वाराह अवतार`ा चित्र है तो दूसरी ओर 'श्री मदादिवाराह' लिखा है।*

औरंगजेब के काल में प्रताप सिंह परिहार ने मेरठ, गाजियाबाद य बुलंदशहर , मुरादाबाद के लगभग आठ सौ गांव पर अधिकार किया था। अनके पुत्र अनूप सिंह ने बुलंदशहर जिले में गंगा –तट पर अनूप शहर बसाया था। उनके पौत्र सादिक सिंह के काल में पंवाशा नामक स्थान में सन 1717 में जौहार व्रत किया था। (मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से क्षत्राणियों के सतीत्व की रक्षा के लिए) संभवतः राणा सॉगा की पत्नी कर्मवती, जो राणा प्रताप की दादी थी, के जौहर (1545) व्रत के बाद भारत के आर्य – वीरों का यह अंतिम जौहर था।

राजपूत काल की महत्वपूर्ण घटना प्रतिहार, पाल एवं राष्टकूटों के बीच कन्नौज की गददी हथियाने हेतु त्रिदलीय संघर्ष की है। नागभट द्वितीय यवं धर्मपाल द्वितीय के बीच 825ई0 के आसपास सूर्यगढ का उपरोक्त युद्ध हुआ था। पुनः महेन्द्रपाल प्रथम ने भी नारायणपाल (पालवंशीय शासक जिसने पशुपतिनाथ नेपाल के आर्चाय को 863 ई0 में मुॅगर दान –पत्र के द्वारा कुछ ग्राम दान किया था) को पराजित किया और मगध, मिथिला एवं अंग प्रदेश के बहुत बड़े भू – भाग को अपने परिहार साम्राज्य में मिला लिया था।

हमारे पूर्वज उक्त युद्धों में सिर्फ भाग ही नहीं लिये, बल्कि साम्राज्य काल में इस सीमांत प्रदेशों का शासक कन्नौज के प्रतिनिधि के रुप में रहे। इन्हीं कारणों से जब प्रतिहारों का सूर्यास्त हुआ और हमारे पूर्वज वापस उँचहर और नागौर चले गए।

तब पुनः (1200 ई.) मुसलमानों के सूर्योदय काल में चन्देल वीर विक्रम के साथ हमारे पूर्वज गृध्रकूट क्षेत्र से होकर द्वादश ज्योतिर्लिंग बाबा वैद्यनाथ धाम पूजा करने पधारे ,कई परिवारों के साथ। उसकाल में इस क्षेत्र की अंतिम पालवंशी सम्राट इन्द्रद्युम्न जिनके प्रसिद्ध गढ का भग्नावशेष खैरा एवं जमुई के बीच मुख्य पथ पर इन्दपै में अवस्थित है के पश्चात निषाद वंशी निगौडिया ने तिकडम करके पगाप्त का लिया था। लोकगाथा है कि महाराज इन्द्रद्युम्न महान सिद्ध जोगी थे। उन्हें कोई संतान नहीं हुई थी। इन्दपै गढ के सामने विशाल तडाग है जिसे कवैया पोखर कहते हैं कि उक्त पोखर में ही राजा और रानी नित्य –प्रति स्नान कमल क`पते पर जोग बल से खडा होकर किया करते थे। उनके दिव्य वस्त्र भगवान सूर्य की कृपा से जोग बल से उन्हें नित्य – प्रति सूर्य नमस्कार के पश्चात प्राप्त होता था।

एक दिन दनके वस्त्र नहीं आये कमल का पता डोलने लगा। वे दोनों किसी तरह महल आये, अन्न जल ग्रहण नहीं किया। रात्रि में साधना में उन्हें यह ज्ञान मिला कि उनके राज्यारोहण का काल समाप्त हो चुका है, अतः अगले सुबह जिस व्यक्ति पर उनकी नजर पडे उसे राजमहल सौंप कर वे वानप्रस्थ के लिए प्रस्थान करें। उसी रात्रि के पश्चात ब्रह्म मुहूर्त में राजा – रानी महल छोड निकल पडे। कहा जाता है कि महल के बाहर निषाद वंशी पहरेदार निगौडिया पर प्रथम नजर पडने के कारण राजमहल उसे सौंप कर अंतिम पालवंशी सम्राट इन्दद्युम्न महल से चल पड़े। इस प्रकार निगौडिया वंशीय राज की स्थापना गृध्रवट पर्वत माला के पैरों पर हुई। उधर महाराज इन्द्रद्युम्न का ही बनाया हुआ (लोकगाथानुसार) है और उसका निर्माण – काल भी महाराज इन्द्रद्युम्न के राज्यारोहण काल के बाद का है। मैने मिथिला के मैथिली भाषा के एक ग्रंथ में पढा (उक्त ग्रन्थ देवघर में है) कि उक्त महाराज इन्द्रद्युम्न का विवाह मिथिला के एक राजघराने में हुआ था। उपरोक्त घटना के उपरांत राज –महिषी अपने मिथिलांचल के नैहर में चली गयी थी। क्योंकि उक्त काल में वह गर्भवती थी। उक्त राज – महिषी ने राय रणमल नामक पुत्र को जन्म दिया।

निगौड़िया वंशीय राजा बडे अत्याचारी हुए। उन्होंने अपने राज्य के ब्रह्मण – क्षत्रिय कन्याओं का बलपूर्वक डोला लेना चाहा । पूरे क्षेत्र के लोग त्राहि – माम त्राहि – माम कर रहे थे। निगौडिया से मुक्ति हेतु सभासदों ने अपने राज – पुरोहित श्री वाजपेयी संभवतः पंडित रामानाथ के नेतृत्व में विद्रोह करना चाहा। विद्रोह की धटाऍं उमड रही थी। उसीकाल में हमारे पूर्वज सह वीर – विक्रम चन्देल कुमार , अन्य राजपूत परिवारों के साथ इस क्षेत्र से गुजर रहे थे। निगौडिया राजा ने उस काफिले को रुकवाया और शस्त्र सज्जित होकर बिना उसके इजाजत के उधर से गुजरने पर दंड देना चाहा। कहा जाता था उसकी नियत में खोट थी। किसी तरह बीच –वचाव कर लोग बाबा वैद्यनाथ की शरण में गये। वहॉ करीब एक माह तक लोग पूजा – अर्चना में लगे रहे।

कहते हैं कि वीर विक्रम को एक रात्रि स्वप्न में भगवान शंकर ने दर्शन देकर कहा यह राज्य तुम्हारे वंश के भोग के लिए है। उस काफिले के बुद्धिमान पंडित श्री गिरीश्वर शुक्ल एवं निगौडिया के राज–पुरोहित श्री रामानाथ वाजपेयी की मंत्रणा के आधार पर मूर्ख निगौडिया अधिपति को, जिसे देवघर से वापसी पर महल में काफिले के लोगों के उपस्थित होने का वचन दिलवाया गया था। कहा जाता है कि काफिला जब लिच्छवीवार के पहुंचा तब निगौडिया के लोगों ने उन्हें पुनः रोका। लोग मौके मौके की ताक में थे।

एक कूटनीतिक प्रयास के तहत बांकुड़ा राजपूतों नें स्थानीय लोगों के शह पर निगौड़िया महल में प्रवेश कर मुख्य द्धार को बंद कर दिया। अंदर में भीषण युद्ध हुआ। निगौड़िया के 16 में से 15 भाई मारे गए। अंतिम भाई भी कुछ दिनों बाद मारा गया। इस प्रकार पालवंशियों के पुराने राज्य पर वीर विक्रम ने चंदेल राज्य की स्थापना की। उनका स्वर्गवास 1298 ई. में हो गया।

पॉल वंश

शशांक की मृत्यु के पश्चात बंगाल में लगभग एक शताब्दी तक केन्द्रिय सत्ता का अभाव रहा तथा वहां राजनीतिक अस्थिरता बनी रही। गोपाल के द्धारा वहां पॉल वंश की स्थापना की गयी। गोपाल के उत्तराध्किारी धर्मपाल हुए। उन्होने 770 – 81. ई. तक शासन किया। अनेक सफलताएँ हासिल की। उसके बाद धर्मपाल के पुत्र देवपॉल राजा बने। उन्होने 810 – 850ई. तक शासन किया। उसके बाद देवपॉल का भतीजा विग्रहपॉल राजा बने। इसके बाद नारायणपॉल, राज्यपॉल, गोपाल द्धितीय और विग्रहपॉल द्धितीय ने 988 ई. तक शासन किया।

मालवा वंश

मलवा पर पहले प्रतिहार वंश का अधिकार था, परंतु उसके पतन के बाद वहॉ परमार वंश का अधिकार हो गया।

अन्हिलवाड़ा – चालुक्य/सोलंकी वंश

अन्हिलवाड़ा में चालुक्य वंश का शासन था। इसे सोलंकी वंश भी कहा जाता है।

नेपाल वंश

ग्यारहवीं शताब्दी के

कन्नौज वंश

कन्नौज में

चेदि वंश

चेदि में कलचुरियों का शासन था और

जजाक मुक्ति/ चंदेल वंश

ज्जाक मुक्ति में चंदेल वंश का शासन था। जजाक मुक्ति

मेवाड़/ गुहिल वंश

1151 ई. तक मेवाड़ में

दिल्ली/ तोमर वंश

ग्यारहवी

कुछ प्रमुख राजवंश और उनके संस्थापक

राजवंश	संस्थापक
परमार वंश	वाक्पति मुंज
गहदवाल वंश	चन्द्रदेव
सेन वंश	विजय सेन
शाही वंश	कल्लर
कलचुरी वंश	वामराज देव
मल्ल वंश	अरमिल्ल देव
लोहर वंश	संग्राम राज
कार्कोट वंश	दुर्लभ वर्मन
उत्पल वंश	अवन्ति वर्मन
प्रतिहार वंश – उज्जैन शाखा	नागभट प्रथम

इतिहासकारों ने कर्नल टांड की तरह स्थल विशेष का निरीक्षण कर भौगोलिक परिवेश के आलोक में यदि इतिहास – लेखन की परिपाटी चलायी होती तो हम अपनी भूली–बिसरी गाथा को आज और प्रमाणिकता के साथ जान और समझ पाते। आधुनिकता के बहाव में मौलिकता को ठेंस पहुची है।

आज राजपूत(क्षत्रिय) समाज को काल चक्र से जुझते आततायियों की असंख्य विनाशकारी और विध्वंशक आक्रमणों के बावजूद राम, कृष्ण, महावीर, गौतम, अशोक, विक्रमादित्य, भोज, बप्पा रावल, राणा–कुम्भा, पृथ्वीराज, राणासांगा, राणा प्रताप और शिवाजी इत्यादि की इस विरासत को बेहद संजीदगी के साथ संजोकर रखने की जरुरत है। जरुरत है उस शक्ति को गौरव मंडित कर सही इतिहास को प्रतिष्ठापित करने की।

इस बात पर बेहद आश्चर्य होता है कि जिन क्षत्रियों – राजपूतों ने हजारों वर्षों तक इस देश की मिटी के लिए, अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए हंसते–हंसते कुर्बानी दे दी, उन्हे कुछ इतिहासकारों ने तो 'विदेशी' तक कह दिया। राजपूत महासभा यह मानती है कि हर व्यक्ति के अंदर विकार होते हैं और निष्पक्षता पूर्वक विकारों की आलोचना भी होनी चाहिए, लेकिन उनके अस्तित्व को चुनौती देकर हरगिज नही।

राजपूत सेना

राजपूत सेना, पैदल सेना, घुड़सेना और हस्तिसेना से मिलकर बनती थी। राजपूत सेना के यह हाथी कभी – कभी अपनी ही सेना के लिए घातक सिद्ध होते थे, अनेक युद्धों में हाथियों ने अपनी ही सेना को रौंद डाला और जीता हुआ युद्ध राजपूत सेना हार गई।

राजपूतों का प्रशासन

राजपुतों की प्रशासन व्यवस्था प्रशंसनीय थी। साधारण प्रजा उनके शासन काल में अत्यंत खुश थी। उन पर करों का बोझ कम था और उनका जीवन सुरक्षित था। राजपूत शासक अपनी प्रजा की हर प्रकार की सहायता और सेवा के लिए तत्पर रहते थे। निचले स्तर पर यद्यपि सामन्ती व्यवस्था थी, परन्तु सर्वोच्च सत्ता राजा के हाथों में थी। राजा का मुख्य कार्य अपने राज्य की बाह्य आक्रमण से रक्षा करना तो था ही, परन्तु साथ ही साथ आन्तरिक सुरक्षा एवं शान्ति व्यवस्था भी बनाए रखना था। इसके अलावा उसका परम कर्तव्य था कि वह इपनी प्रजा को सभी प्रकार के कष्टों से मुक्त रखे। राजा को शासन प्रबन्ध में सहायता देने के लिए युवराज और मन्त्रिमण्डल होते थे। अक्सर राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज नियुक्त करता था जो उसका उत्तराधिकारी होता था। परन्तु कभी–कभी राजा अपने छोटे पुत्रों को भी युवराज नियुक्त करता था।

मन्त्रियों की संख्या राजा की इच्छा पर निर्भर करती थी। 'अल्लट' का मंहामन्त्री 'मम्मट' था। मन्त्रियों के अतिरिक्त महाप्रतिहार (दरबारी), संधिविग्रहिक (विदेश मंत्री), भण्डागारिक (सैन्य सामग्री एकत्रित करने वाला), कोटपाल (दुर्गनिरीक्षक), दण्डपाशिक (पुलिस अधिकारी), भिषक (राजवैद्य), भण्डारिक (राजकोष अधिकारी) तथा आंतःपूरिक आदि अधिकारी होते थे अलावा **राजपुरोहित** को भी उच्च स्थान प्राप्त था।

प्रशासन में सेना का स्थान महत्वपूर्ण था। राजस्व का अधिकांश भाग सेवा पर खर्च किया जाता था। सामंन्तो की सेना पर राजा यद्यपि निर्भर करता था फिर भी उसकी अपनी अलग सेना होती थी। पैदल, हाथी , अश्व एवं रथ सेना का मुख्य अंग होते थे। कुछ शासकों के पास नौ सेना भी थी।

यद्यपि पृथक न्यायालयों की व्यवस्था थी, लेकिन राजा ही सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। याय का आधार धर्मशास्त्र को ही माना जाता था। दण्ड व्यवस्था कठोर नहीं थी। साधारणतः जुर्माने की सजा अधिक सुनायी जाती थी। अंग – विच्छेद के दण्ड का भी प्रावधान था। सत्य की जॉच के लिए कभी कभी अग्नि परीक्षा ली जाती थी।

*प्रशासन की सुविधा के लिए राज्य को कई प्रान्तों में बॉटा जाता था, जिन्हें **'मण्डल'** कहते थे। इनका शासक **'मण्डलिक'** कहलाता था। मण्डलों के अन्तर्गत 'विषय' आते थे जिनका अधिकारी 'विषपति' होता था। ब्राह्मणों को दान में दिए गए गॉव **'अग्रहार'** कहलाते थे और इनके अधिकारी को तन्त्रपाल कहा जाता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम प्रशासन का उतरदायित्व 'पंचकुल' पर था। जिनमें पॉच व्यक्ति प्रमुख होते थे जो सभी प्रकार के झगड़े निपटाते थे। इनके निर्णयों को राजा की मान्यता प्राप्त होती थी। बड़ी मण्डियों का शासन कार्य मण्डपिकाएँ चलाती थी। इनका प्रमुख कार्य बाजार प्रबन्ध कर वसुली, तालाबों एवं सड़कों की मरम्मत कराना आदि था। बंजर भूमि पर पंचकुल का अधिकार होता था और ये ही विभिन्न समितियों के लिए नियम बनाते थे। प्रत्येक समिति को अपने कार्य का विवरण ग्राम सभा के सम्मुख रखना होता था। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्राम प्रशासन जनतन्त्र पर आधारित था। कुल उपज का छठा भाग भूमिकर के रुप में लिया जाता था।*

सामाजिक स्थिति

राजपूत काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ। उनकी स्थिति में काफी गिरावट आयी थी। इसके बावजूद उनकी स्थिति सम्मानजनक बनी हुई थी। औरतों को मॉ, बहिन और पत्नी के रुप में आदर एवं सम्मान मिलता था। स्त्रियों के लिए शिक्षा के द्वार खुले हुए थे और उन्हे पति चुनने का अधिकार था। नादोल के राजा की बहिन दुर्लभ देवी तथा जयचंन्द्र की बहिन संयोगिता ने अपने पति स्वयं चुने। साहस और बहादुरी में राजपूत स्त्रियॉ पुरुषें से किसी भी प्रकार से कम नही थीं। अनेक कठिन परिस्थितियों में राजपूत स्त्रियों ने आश्चर्यजनक साहस का परिचय दिया है और वीरतापूर्ण कार्य किए हैं। स्त्रियॉ अपने पति के लिए समर्पित होती थी और अपनी इच्छा से 'सती' होती थी। आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा उन्हें सबसे अधिक प्रिय थी। स्त्रियॉ अपने सम्मान की रक्षा के लिए स्वयं को सामूहिक रुप से अग्नि को समर्पित कर देती थी। इसे 'जौहर' कहा जाता था। रानी पद्यमिनी का जौहर राजपूत इतिहास में प्रसिद्ध है। 'विधवा विवाह' प्रचलित नहीं था, फिर भी विधवा विवाह की कुछ घटनाएं प्रकाश में आयी हैं। राजपूतों में पर्दा –प्रथा नहीं थी।

राजपूत काल में वर्ण–व्यवस्था ही सामाजिक जीवन का आधार थी। ब्राह्मण एवं राजपूतों को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। ब्राह्मण धर्मशास्त्रों के आधार पर समाज का मार्गदर्शन करते थे। राजनीतिक सत्ता राजपूतों के पास थी। ब्राह्मण उनके प्रमुख सलाहकार होते थे। कर्नल टाड के अनुसार, ''क्षत्रिय वर्ग अदम्य उत्साह, राष्ट्रभक्ति, देशप्रेम, वैमनस्य आदि गुणों से युक्त था। ''ब्राह्मण एवं राजपूतों के बाद

समाज में तीसरा स्थान वैश्यों का था। वैश्य व्यापार करते थे। सारी आर्थिक व्यवस्था उन्हीं के हाथें में केन्द्रित थी।

इस काल में जाति सम्बन्धी नियम थे। 'बलूता प्रथा' विकसित हो गई थी। यह स्मरणीय तथ्य है कि बंगाल और गुजरात में जहॉ व्यापार प्रगति पर था वहॉ मुद्रा बहुत कम मात्रा में मिली हैं।, अर्थात यह कहा जा सकता हैं कि मुद्रा का कम प्रचलन ही इस काल की विशेषता हैं।

राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ

वर्ण–व्यवस्था के आधार पर विश्वरुप तथा मेंघातिथि ने क्षत्रियों को राजसत्ता का अधिकारी माना हैं। किन्तु व्यवहार में क्षत्रियेत्तर जाति के शासको को भी कुछ भाष्यकारों ने वैद्य घोषित किया। स्मृतिकारों ने प्रजा को सुरक्षा प्रदान करना राजा का प्रमुख कर्तव्य माना है। इसके ही साथ राजा की असीमित शक्ति को मान्यता देने पर भी उसे धार्मिक तथा लोकमान्यताओं पर आधारित नियमों को मानने पर बल दिया गया है। मेघातिथि ने प्रजा संरक्षण के दो स्वरुप निर्दिष्ट किए हैं :–

*1 **राजा का अनुबन्ध** – जाति – धर्म अर्थात कर देने वालों की सुरक्षा न करने पर राजा पाप का भागी होता हैं। अर्थात सुरक्षा प्रदान करने के एवज में राजा अपनी आजिविका प्राप्त करता है।*

*2 **राजा के सामान्य धर्म** अर्थात यदि राजा निर्धन, असहाय या श्रोत्रीय की रक्षा नहीं करता तो वह स्वर्ग का अधिकारी नहीं रह जाता।*

***मनु** के अनुसार कर न देने वाले व्यक्ति की सुरक्षा का दायित्व भी राजा को उठाना पडता है, किन्त ु यदि राजा कर प्राप्त करके भी चोरों का विनाश नहीं करता तो इस लोक में प्रजा के असंतोष का कोपभाजन बनता है। **कल्प तरु** में **मनु** के अनुरुप ही लोक रक्षा के लिए राजा को लोकपालों के तत्वों से उत्पन्न घोषित किया हैं। ज्ञात होता है कि राजाओं की उत्पति से जुड़ा यह सिद्धान्त दैवी सिद्धान्त की पुष्टि करता है।*

***विज्ञानेश्वर** के अनुसार राजा की न्याय सभा में विद्वान ब्राह्मणों की भूमिका गौण थी। उसके अनूसार न्यायसभा में व्यापारियों का प्रतिनिधित्व अनिवार्य था। शुक के अनुसार नीतिशास्त्र एक आदर्श राज्य व्यवस्था का प्रतिपादन करने के साथ ही राजा के कल्याण एवं अधिकार क्षेत्र की सीमा पर विस्तार से विचार करता है। नीतिशास्त्र समाज के हर वर्ण को प्रभावित करता है। शुक्र के अनुसार अपने पूर्व जन्म के कर्मो के कारण ही राजा पृथ्वी का शासक बनता है और अपने कर्म तथा तप से बलशाली बनता है।*

***आठवीं** से **बारहवीं सदी** का काल राजपूत काल कहा जाता है। इस दौरान प्राचीन राज–व्यवस्था क तत्व नवीन परिवर्तनों के साथ विद्यमान रहे। इस दौरान राजनीतिक*

अनेकता विद्यमान रही। सम्पूर्ण उतर भारत पर किसी एक सम्प्रभु सत्ता का आधिपत्य नहीं रहा। अनेक छोटे – छोटे राज्य अस्तित्व में आ गए थे।

इसलिए राज–व्यवस्था क्षेत्रीय स्तर के सामाजिक तथा आर्थिक आधार पर संगठित राज्य व्यवस्था की देन थी। सामंती प्रथा ने स्थानीय शासन व्यवस्था को स्थायी रुप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

राजा राज्य संचालन के लिए मन्त्रिपरिषद की नियुक्ति करता था और अपनी इच्छानुसार उन्हें हटा भी सकता था। कुछ प्रमाणों से विदित होता है कि मंत्री पद में वंशानुगत प्रवृति आ गई थी। मन्त्रिपरिषद में मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं थी। मन्त्रियों के मंत्रालय निश्चित होते थे।

प्रशासन में सुविधा के लिए राज्य प्रान्तों में प्रान्त – मण्डलों में तथा मण्डल – विषयों में बॅटे होते थे। प्रतिहार काल में ग्वालियर प्रशासन में कोटपाल, बंलाधिकृत, दो श्रेष्ठिन और सार्थवाह की एक समिति थी। नगर प्रशासन में व्यापारी वर्ग का महत्व था तथा सैनिक–असैनिक प्रशासन में विभाजन था। श्रेष्ठिन और सार्थवाह असैन्य अधिकारी थे।

तंत्रपाल नामक भूमि अधिकारी की नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी जिसकी अनुमति भूमिदान के लिए आवश्यक थी। राजपूत काल में भूदान की परम्परा का व्यापक विकास हुआ। जिन्हें भूमि दान में दी जाती थी उन्हें प्रशासनिक अधिकार भी होते थे। बदले में वे राजा को कर एवं सैनिक सहायता प्रदान करते थे।

पैदल सैनिक, अश्व सेना व हस्ति सेना, सेना के प्रमुख अंग थे। नौ सेना का उपयोग केवल चोल एवं पाल वंश ने किया। महासेनापति, सेनापति, बलाधिकृत, सैन्य अधिकारी थे। कोटपाल दुर्ग का सैना अधिकारी होता था।

कृषि एवं भू – व्यवस्था

गुप्तोत्तर काल में भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस महत्वपूर्ण परिवर्तन का कारण भूमि दान तथा भूमि की व्यवस्था थी। इस नई भू–व्यवस्था में सामन्तवाद को दृढ़ किया और समाज को पूरी तरह प्रभावित किया तथा समाज के हर वर्ण पर अपना स्पष्ट प्रभाव छोड़ा।

उड़ीसा,, मध्य भारत, महाराष्ट, असम, बिहार, बंगाल, बुन्देलखण्ड, राजस्थान आदि से प्राप्त राजपूतकालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजा महाराजाओं ने ब्राह्णों और धार्मिक संस्थाओं को भूमि अथवा ग्राम दान किए थे। इसी के फलस्वरुप धीरे – धीरे भू–व्यवस्था में परिवर्तन आने लगे।

....समाप्त..

नोट :–

***यह वेबसाईट गौतम बुद्ध सेवा संस्थान, जमषेदपुर** की प्रस्तुति और प्रयास मात्र है। हमे पूर्ण विष्वास है कि इस वेबसाईट से **क्षत्रिय–राजपूत** परिवारों के **षादी–विवाहों** तथा इतिहास और वत्र्तमान को जानने और समझने में इसकी उपयोगिता तेजी से बढ़ेगी। आपके विचार/सुझावों का हम सहृदय स्वागत करते हैं। देष के कोने–कोने में बसे तथा विदेषों में रह रहे क्षत्रिय–राजपूत* (एन. आर. आई*) बन्धुओं से यह सादर अनुरोध है कि वे अपना और आसपास में रह रहे क्षत्रिय–राजपूत बन्धुओं पूर्ण विवरण अवष्य भेजें।*

डणॅणॅपदही श्डंदेंश

क्लण च्तमेपकमदज

त्रंचनजॅउंर

—

बेंपतउंद.बनउ.डंदंहपदह ज्तनेजमम

ळवनजंउ ठनकींॅमअॅदेजींद

श्रंउेीमकचनतण

म्उंपस . तंरचनजऋउींइीं/लीववणबवउ

हवनजंउण्इनकीं/लीववणबवउ

उंदेंऋ324/लीववणबवणपद

।ककतमेरू

4धः6एॅवनजी च्ंताए ठपेजनचनत

श्रंउेीमकचनत दृ 831 001ण

श्रींतींदक ;प् छ क प् ।द्ध

३३३३३३३३३३३३३३३३३३३३३ण्ण